REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के जगत् विषयक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रज्ञा मिश्रा
अपर पुलिस अधीक्षक , सी.बी.सी.आई.डी. , बरेली , उ.प्र.

प्रस्तावना :

शंकराचार्य और रामनुजाचार्य दोनों ही वेदान्त दर्शन और भारतीय दर्शन के महान दार्शनिक हैं। इनके जगत् विषयक विचार परस्पर विरुद्ध नहीं है, वरन् उपनिषद् की भिन्न दृष्टि से गयी व्याख्याओं के परिणाम हैं। दोनों में केवल दृष्टिकोण का अन्तर है। शंकराचार्य को व्यवहार के स्तर पर रामानुजाचार्य के जगत् विचार स्वीकार्य हैं। शंकराचार्य जगत् और जागतिक वस्तुओं को उतना ही यथार्थ मानते हैं, जितना रामानुजाचार्य मानते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति पर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। आचार्य शंकर और रामानुज के दर्शन भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते।आचार्य शंकर का काल बौद्ध धर्म के अतिशय प्रभाव और वैदिक धर्म के पतन का काल था। अतः शंकराचार्य का मूल उद्देश्य वैदिक मत को सुदृढ़ करना और जन–जन तक पहुँचाना था।अपने समय की आवश्यकता के अनुरूप शंकराचार्य ने नास्तिक बौद्ध दर्शन का खण्डन कियाऔर अपने प्रबल तर्कों से उसकी नींव हिला दिया तथा शास्त्रार्थ, मठ स्थापना, धार्मिक यात्रा आदि के द्वारा वैदिक मत को पुनर्जीवन दिया। बौद्धों के 'अनात्मवाद'और'क्षणभंगवाद' कीप्रतिक्रिया–स्वरूप नित्य, शाश्वत, ध्रुव आत्म–तत्व को स्वीकार कर ब्रह्मवाद का प्रतिपादन किया। ब्रह्म की ही एक मात्र सन्ता स्वीकार किया, जीव को 'ब्रह्म ही माना और जगत् को मिथ्या बताया–'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवों ब्रह्ममैव नापराः'। इस प्रकार शकं राचार्य ने अद्वतै मत का प्रतिपादन किया।

समय के साथ वैदिक मत में प्रविष्ट हो गए वैदिक हिंसा आदि कर्मकाण्डों को जिनका बौद्धों ने भी उपहास किया था और जिनकी वजह से वैदिक धर्म रसातल में जा रहा था,शंकर ने त्याज्य बताया और कर्म की जगह ज्ञान को प्राथमिकता दिया। वैदिक धर्म में बढ़ते अंधविश्वास को समाप्त करने के लिए ही उन्होंने युक्तियों के आधार पर संगत और अनुभूत ज्ञान को ही स्वीकार करने को कहा। उनका कहना था कि यदि सभी श्रुतियाँ कहें कि आग नहीं जलाती तो भी हमें अपने अनुभव को सत्य मानते हुए अग्नि की ज्वलन – शीलता को स्वीकार करना चाहिए– 'न हि श्रुति शतमपि शीतोऽग्निप्रकाशे वेति ब्रुवत् प्रामाण्यमुपैति[1]। इस प्रकार, शंकराचार्य केवल अन्धविश्वास के कारण श्रुति को मानने के लिए नहीं कहते। अपने दार्शनिक मतों के प्रतिपादन में भी केवल श्रुतियों के उदाहरण देकर ही शंकराचार्य सन्तुष्ट नहींहो जाते, बल्कि उसको स्पष्ट करने के लिए अकाट्य युक्तियाँ भी प्रस्तुत करते हैं। वे श्रुतिकी अपेक्षा युक्ति को अनुभव के अधिक निकट मानते हैं– 'युक्तिरनुभवस्य सन्निकृष्यते'[2]। ज्ञान और तर्क को अत्यधिक महत्व देने के कारण प्रायः शंकर पर अतिशय बौद्धिकता और शुष्कदर्शन प्रतिपादित करने का आरोप लगाया जाता है। शंकराचार्य का मत ज्ञान प्रधान अद्वैतवाद है। शकंराचार्य के बाद दसवीं व ग्यारहवीं शताब्दी में

अनेक वैष्णव आचार्यों ने भक्ति विचार को दार्शनिक आधार प्रदान किया जिनमें रामानुज का नाम अग्रणी है। शंकराचार्य ने केवल ब्रह्म को सत्य माना और जगत को मिथ्या कहा। उन्होंने जीवात्मा की ब्रह्म से इतर सत्ता नहीं माना इस लिए भक्ति का उनके मत में कोई स्थान नहीं है। बौद्ध दर्शन के खण्डन और उन्मूलन में शंकर सफल रहे, लेकिन उनका अद्वैतवाद जनसाधारण के दुःखों को दूर करने में सफल न हो सका। लोग ऐसे ईश्वर की अपेक्षा करते हैं, जो उन पर दया कर सके और संकट में उनकी रक्षा कर सके। रामानुज ने जन–सामान्य की इस अपेक्षा को देखते हुए परमात्मा की ही भाँति जीवात्मा की सत्ता को भी स्वीकार करके भक्ति के लिए स्थान बना दिया। उन्होंने भक्ति सम्प्रदाय के स्तर को काफी ऊँचाइयों तक पहुँचाया और सम्पूर्ण भारतवर्ष में इसको प्रचारित–प्रसारित किया। रामानुज ने शंकर के अद्वैतवाद और प्राचीन भागवत धर्म को संयुक्त करके विशिष्टाद्वैत नामक विचारधारा का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार जीवात्मा और जगत् ब्रह्म के ही अंश है। ब्रह्म जीव और जगत् से विशिष्ट है। वैष्णव धर्म में मन्दिर में पूजा–अर्चना और अवतारवाद का विशेष महत्व है। मूर्ति को ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप माना जाता है। यह शंकराचार्य की बौद्धिक नीरसता और कठोरता की तुलना में अधिक बोधगम्य और सरल था।

रामानुज का काल सामाजिक, राजीनतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से अस्त–व्यस्त रहा है। उस समय श्रीरंगम पर चोल शासक अधि राजेन्द्र का अधिपत्य था। वह कट्टर शैव था और अन्य धर्मावलम्बियों का उत्पीड़न उस समय सामान्य बात थी। उस समय तांत्रिक पूजा भी पराकाष्ठा पर थी। तन्त्र शास्त्र के पंचमकार का आध्यत्मिक अर्थ न सर्वस्व समझकर इसके वाह्य और स्थूल अर्थ को ही सर्वस्व समझकर उपासकों ने मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन का पूजा पद्धति में प्रयोग शुरू कर दिया था। वेदान्तियों ने इस पूजा पद्धति का विरोध किया रामानुज के पूर्व भारत में शैव, शक्ति, वैष्णव और गणमान्य तांत्रिकों का प्रभुत्व था। वैदिक धर्म डोलायमान हो रहा था। ऐसे समय में रामानुज ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना कर धर्म को स्थायित्व प्रदान किया है।

इस प्रकार शंकर और रामानुज दोनों का दर्शन तत्कालीन परिस्थतियों से प्रभावित है और उनमें दृष्टिगत भेद भी इन्हीं वाह्य कारकों के कारण है। वस्तुतः वे दोनों ही वेदान्ती हैं। दोनों की वेदों में समान रूप से आस्था है। दोनों ने ही वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार किया है और अवैदिक मतों का खण्डन किया है। दोनों अपने दर्शन का आधार श्रुति–ग्रन्थ और विशेषतः ब्रह्मसूत्र को मानते हैं। दोनों ही एकमात्र ब्रह्म की सत्ता स्वीकारते हैं और जीव और जगत् को उस पर आश्रित मानते हैं। अर्थात् दोनों ही ब्रह्म को जगत् का उपादान और निमित्त कारण मानते हैं। महर्षि वादरायण का अनुसरण करते हुए शंकर और रामानुज दोनों मुख्यतः जगत् विषयक निम्न मतों का खण्डन करते हैं–

1. भौतिक परमाणु स्वभावतः परस्पर मिलकर संसार को उत्पन्न करते हैं।
2. अचेतन प्रकृति से स्वभावतः सांसारिक विषयों का विकास होता हैं।
3. चेतन और अचेतन दो प्रधान तत्व हैं जिनमें पहला जगत का निमित्त कारण है और दूसरा उपादान कारण है।

शंकर और रामानुज दोनों ही उपनिषद् के 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' इस वाक्य के आधार पर सिद्ध करते हैं कि जड़ और चेतन दो पृथक सत्ताएँ नहीं है। किन्तु एक ही मूल सत्ता में आश्रित मानते हैं। इस प्रकार शंकर और रामानुज दोनों ही अद्वैतवादी है अर्थात् दोनों एक मूल तत्व या ब्रह्म को मानते हैं, जो चराचर जगत् में व्याप्त है। दोनों ही दार्शनिक कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। मोक्ष की प्राप्ति दोनों ही ज्ञान से सम्भव मानते हैं। यद्यपि रामानुज की ज्ञान की परिभाषा शंकर की परिभाषा से भिन्न है, तथापि दोनों इतना तो मानते ही हैं कि ज्ञान मोक्ष के लिए आवश्यक है। दोनों के अनुसार जीव और जगत् भी अनादि है। शून्यवाद तथा न्याय–वैशेषिक दर्शनों के आरम्भवाद या असतकार्यवाद के दोनों ही घोर विरोधी हैं। जीवन और ईश्वर के बीच का सम्बन्ध भी दोनों ने एक जैसा माना है। दोनों की दृष्टि में ईश्वर जीवों के कार्यों का फलदाता है।

यद्यपि शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के दर्शन में उपर्युक्त समानताएँ हैं, तथापि शंकराचार्य अद्वैती कहलाते हैं और रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैती कहलाते हैं। शंकराचार्य ब्रह्म और जीव–जगत् का द्वैत नहीं मानते। उनके अनुसार परम तत्व अद्वैत है। रामानुजाचार्य ब्रह्म को 'चित्' और 'अचित' विशेषणों से विशिष्ट मानते हैं। जहाँ शंकराचार्य जीव और जगत् को मात्र व्यावहारिक रूप से सत्य मानते हैं, वहीं रामानुजाचार्य जीव और जगत् को शाश्वत सत्य मानते है। इस प्रकार, रामानुजचार्य के दर्शन में ईश्वर, चित् और अचित् तीन तत्वों की सत्ता परिलक्षित होती है–'ईश्वराश्चिदचिच्चेति पदार्थं त्रितयं हरिः[3]। रामानुज तत्व–त्रय का

प्रतिपदन तो करते हैं किन्तु इन तीनों में से दो अर्थात् चित् और अचित ईश्वर के बिना अस्तित्ववान नहीं रह सकते। यद्यपि ये तीनों यथार्थ सत्तायें हैं तथापि चित्–अचित और ईश्वर में विशेषण–विशेष्य, अंग–अंगी, प्रकार–प्रकारी, शरीर–शरीरी, अंश–अंशी का संबन्ध पाया जाता है। शकंराचार्य 'एकाऽेहं द्वितीयो ं नास्ति' से सहमति व्यक्त करते हुए एक मात्र ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करते हैं। पारमार्थिक रूप से शंकर ब्रह्म को निर्गुण और व्यवहारिक दृष्टि से सगुण मानते हैं। 'सत्यंज्ञानमनन्तम् ब्रह्म' सगुण ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है तथा 'जन्माद्यस्य यतः' इसका तटस्थ लक्षण है। सगुण ब्रह्म ही जगत् प्रपंच का कारण है। रामानुज ब्रह्म को सगुण मानते हैं। उनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म कोरी कल्पना है। उपनिषदों में जहाँ ब्रह्म को निर्गुण कहा गया है, वहाँ रामानुज का कहना है कि निर्गुण का अर्थ गुणों का अभाव नहीं, वरन् 'हेय गुणों का अभाव' है। अतः रामानुज का ब्रह्म शुभ और उच्च गुणों से युक्त तथा अशुभ और निकृष्ट गुणों से रहित है– 'निर्गुणवादाः च परस्य ब्रह्मणों हेयगुणासम्बन्धात् उपापद्यन्ते'[4]। ब्रह्म ही सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता है। प्रलय की स्थिति में चित्–अचित् बीजावस्था में ब्रह्म में निहित रहते हैं तथा सृष्टि की दशा में ब्रह्म चित् और अचित् क्रमशः शरीरी जीवों तथा भौतिक विषयों में व्यक्त रहते हैं। प्रथम स्थिति में ब्रह्म को 'कारण ब्रह्म' तथा द्वितीय स्थिति में 'कार्य ब्रह्म' कहा जाता है। रामानुज के अनुसार, जीव और जगत् का ब्रह्म से 'अपृथक् सिद्धि' नामक सम्बन्ध है, अर्थात् जीव और जगत् की वास्तविक सत्ता है, किन्तु उनकी सत्ता ईश्वर पर निर्भर है। उल्लेखनीय है कि शंकराचार्य जीव की सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं मानते और जगत् की सत्ता वास्तविक नहीं वरन् मिथ्या मानते हैं।

यद्यपि शंकर और रामानुज दोनों ब्रह्म को जगत् का कारण मानते हैं, परन्तु जहाँ रामानुज जगत् का ब्रह्म का वास्तविक रूपान्तरण मानते हैं (परिणामवाद) वहीं शंकराचार्य जगत् को ब्रह्म का आभास या विवर्त मानते हैं (विवर्तवाद)। ब्रह्म का वास्तविक परिणाम मानने के कारण रामानुज जगत् को सत् मानते हैं। ब्रह्म का वास्तविक परिणाम न मानते हुए भी शंकर जगत् को असत् नहीं कहते। आचार्य शंकर के अनुसार, जगत् सत्–असत् से विलक्षण अतएव मिथ्या है। अतः यह कहना उचित नहीं है कि आचार्य शंकर जगत् की समस्या का उत्पादन नहीं करते बल्कि उसे उडा देते हैं। कभी भी शंकराचार्य ने जगत् को असत् नहीं कहा है। वे तो स्वप्न और भ्रम के पदार्थो ं की भी सत्ता मानते हैं और उन्हें प्रातिभासिक सत्ता कहते हैं,जबकि वस्तुवादी तक इन्हें असत् मानते हैं। लौकिक अनुभव के पदार्थोंको शंकर व्यावहारिक सत्ता के अन्तर्गत रखते हैं,जो प्रतिभास से उच्चतर है। प्रतिभास का बाध व्यावहारिक स्तर के ज्ञान से हो जाता है। अतः व्यावहारिक सत्ता तब तक पूर्णतः सत्य है जब तक परमार्थ का ज्ञान नहीं हो जाता। अतः जगत्, जगत् की वस्तुएँ और समस्त जागतिक कार्य–व्यापार व्यवहार के स्तर पर सत्य है, जब तक परमार्थ का ज्ञान नहीं हो जाता। शंकर का दृढ़ अभिमत है कि व्यवहार के स्तर से जगत् का निषेध असम्भव है और परमार्थ विधि–निषेध से ऊपर है।

जगत् के सम्बन्ध में शंकराचार्य का मत 'एक की सिद्धि से अनेकत्व तिरोहित हो जाता है' इस उपनिषद् वाक्य पर आधारित है। इस वाक्य का अर्थ शंकर के अनुसार यह हुआ कि जगत् की अनेकता यथार्थ नहीं है, क्योंकि जब जीव को ब्रह्म के अद्वैत स्वभाव का ज्ञान हो जाता है तो उसके लिए सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है, उसके लिए जागतिक वस्तुओं का ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं रहता। समस्त जगत्–प्रपंच को जीव अज्ञानवश यथार्थ समझने लगता है। जबकि जगत् मिथ्या है, एकमात्र ब्रह्म ही सत् है। रामानुज का जगत् विषयक मत 'एक अनेक हो जाता है' इस उपनिषद्–वाक्य पर शब्दतः आधारित है। इस प्रकार, रामानुज के अनुसार सृष्टि वास्तविक है और ब्रह्म (सगुण) उसका स्रष्टा है। ईश्वर ने इस जगत् की सृष्टि उस उपादान से की है, जो उसके व्यक्तित्व में पहले से ही निहित है। रामानुज के अनुसार, सृष्टि के पहले सब कुछ ईश्वर में अन्तर्निहित है। इस ईश्वर को कारण ब्रह्म कहा गया है। सृष्टि कार्य ब्रह्म है। यह ईश्वर में निहित चित् और अचित् तत्त्वों का व्यक्त रूप है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का ही रूपान्तरण है। अतः जगत् मिथ्या नहीं हो सकता। इसके विपरीत शंकराचार्य का मानना है कि कारण–ब्रह्म और कार्य ब्रह्म का द्वैत सम्भव ही नहीं है। वास्तविकता पूर्णतः अद्वैत है। जगत् ब्रह्म का वास्तविक रूपान्तरण नहीं, वरन् आभास मात्र है। यह आभास आवरण और विक्षेप नामक द्विविध शक्तियों से युक्त माया के कारण होता है। माया से एक ओर तो ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप पर आवरण पड जाता है और दूसरी ओर उसमें अनेकत्व का आरोपण हो जाता है। रामानुज शंकर की माया का प्रबल विरोध करते हैं। उनके अनुसार, माया ईश्वर की शक्ति है जो वास्तविक सृष्टि करती है। यह सार्वभौम भ्रान्ति उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। रामानुज के अनुसार विविधतापूर्ण यह जगत् ईश्वर द्वारा सृजित है। यह सृजन कैसे सम्भव हुआ, मानव बुद्धि के लिए यह सदैव आश्चर्य का विषय रहेगा। ईश्वर अपनी जिस रहस्यमय शक्ति से जगत् की सृष्टि करता है, वह शक्ति मानवीय बुद्धि की सीमाओं से परे है। यह रहस्यमय शक्ति ही रामानुज की माया है, जिसका स्वरूप अवर्णनीय है। इस प्रकार, रामानुज के अनुसार जगत् सर्वथा सत्य है। चित् और अचित् ईश्वर पर आश्रित भी

है और नित्य भी है। नित्य होने से ये उत्पत्ति–विनाश रहित है। यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की लीला है और ईश्वर के संकल्प से उत्पन्न हुयी है।

जगत् विषयक शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के मतों का निष्पक्ष विश्लेषण करने पर कहा जा सकता है कि शंकराचार्य का मत सृष्टि का अधिक युक्तिसंगत कारण बतलाता है। यदि रामानुज के मत को स्वीकार करते हुए यह माना जाए कि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है और अचेतन प्रकृति जैसी किसी अन्य वस्तु को लेकर जगत् का सृजन करता है, तब ईश्वर के अतिरिक्त उस दूसरी वस्तु की सत्ता भी माननी पड़ेगी और ऐसा मानने पर एकमात्र ईश्वर की ही सर्वव्यापी सत्ता नहीं रह जाती है। पुनः, यदि ईश्वर की प्रकृति को सत्य भी मानते हैं और ईश्वर में आश्रित भी मानते हैं तथा इस जगत् को उसका वास्तविक परिणाम मानते हैं तो एक समस्या उत्पन्न हो जाती है। प्रकृति या तो ईश्वर का एक अंग मात्र है या सम्पूर्ण ईश्वर से अभिन्न है। यदि पहले विकल्प को माना जाए तो ईश्वर को अवयव युक्त मानना पड़ेगा और अवयवों से युक्त ईश्वर विनाशशील सिद्ध होगा, यह ईश्वर की अवधारणा के विरुद्ध होगा। यदि दूसरे विकल्प को स्वीकार किया जाए तो प्राकृतिक विकास का अर्थ होगा सम्पूर्ण ईश्वर का जगत् के रूप में परिणत हो जाना। लेकिन तब तो सृष्टि के उपरान्त ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं बचेगा। पुनः यदि ईश्वर में विकार होना मानेंगे तो ईश्वर नित्य निर्विकार नहीं कहा जा सकता। ऐसा ईश्वर 'ईश्वर' कहलाने योग्य नहीं रहता। आचार्य शंकर के जगत् विषयक मत को मान लेने पर इन कठिनाइयों का निराकरण हो जाता है। क्योंकि उनके अनुसार, जगत् विकार है और विकार आभास मात्र है, वास्तविक परिवर्तन नहीं है। इस प्रकार जगत् विषयक शंकराचार्य की मान्यता श्रुतियों के अनुकूल भी है और तार्किक दृष्टि से भी अधिक समीचीन है। जीव को स्वतन्त्र सत्तावान मानने के कारण रामानुज के दर्शन में जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध की भी असमंजस पूर्ण स्थिति है। दोनों में या तो भेद सम्बन्ध होगा या अभेद। आचार्य शंकर दोनों में अभेद मानते हैं, किन्तु रामानुज किस प्रकार का सम्बन्ध इनमें मानते हैं यह स्पष्ट नहीं है। इसीलिए मध्वाचार्य ने लिखा है कि, उनके दर्शन में भेद , अभेद और भेद में अभेद ये तीनों विरोधी सिद्धान्त सम्मिलित किए गए हैं –'परस्परविरुद्धभेदादिपक्षत्रय.....'[5]। रामानुज जब शंकराचार्य के मत का खण्डन करते हैं तो वे द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं[6]। किन्तु जब वे एकतत्त्ववादी शास्त्रों की व्याख्या करते हैं तब वे तादात्म्य सम्बन्ध का समर्थन करते प्रतीत होते हैं[7]। कहीं–कहीं रामानुजाचार्य ने भेद में अभेद का भी प्रतिपादन किया है[8]। इन्हीं तथ्यों को देखते हुए प्रो0 चटर्जी और दत्ता ने लिखा है, रामानुज के भेद, अभेद और भेद में अभेद के सम्बन्धों का अस्पष्ट निरूपण देखकर कुछ लेखक इनमें से किसी एक सम्बन्ध को रामानुज के सिद्धान्त में निर्धारित करने की कठिनाई से बचने के लिए सम्बन्ध का एक नया पदार्थ ही स्वीकार कर लेते है और कहते हैं कि रामानुज की अवधारणा में ईश्वर और जीव का सम्बन्ध स्वयं एक पदार्थ है। इसे वे 'अपृथक्सिद्धि' कह सकते हैं। किन्तु यह तार्किक कठिनाई से बचने का एक बहाना है। अस्तित्व की अपृथकस्थिति स्वयं एक अस्पष्ट सम्बन्ध है। उनमें कई कठिनाइयाँ हैं[9]। इन सम्बन्धों के विषय में रामानुज के अस्थिर विचार इस तथ्य का स्पष्ट संकेत देते हैं कि विशिष्टाद्वैत में ईश्वर और जीव का सम्बन्ध बताने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई के मूल में 'दर्शन के परम् और धर्म के परम्' के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास और तज्जन्य संघर्ष को माना जा सकता है। प्रो0 हिरियन्ना के शब्दों में कहा जा सकता है कि, इस समन्वय की भावना के प्रयास में ईश्वरवादी मत अपनी पुरानी परम्परा के कारण ऐसे अनेक तथ्य साथ ले आया जिन्हें तर्कीय समर्थन प्राप्त नहीं था। दार्शनिक सिद्धान्त में प्रवेश होने से बड़ी साहसी प्राक्कल्पनाएँ रचनी पड़ी। अतः रामानुज के दर्शन की कुछ समस्याएँ उनकी समन्वय भावना के कारण ही उत्पन्न हुयी है[10]।

शंकर और रामानुज के दर्शन में जो वैषम्य परिलक्षित हो रहा है वह दोनों की सम्प्रदाय गत मान्यताओं के कारण है। मूलतः दोनों अद्वैती है और एकमात्र ब्रह्म को ही परम् सत् मानते हैं। रामानुज के दर्शन को हम अद्वैत दर्शन की प्रतिक्रिया के रूप में समझ सकते हैं। आचार्य रामानुज ने अद्वैत दर्शन की मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर आलोचना किया है। प्रथम, अद्वैत दर्शन मात्र अभेद को मानता है, जबकि भेद को अभेद का विशेषण माने बिना एकत्व की सिद्धि नहीं की जा सकती। द्वितीय, करोड़ों लोगों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत जगत् की सत्ता को अद्वैत द्वारा नकार देना। तृतीय, अद्वैत दर्शन में भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं बचता। प्रथम बिन्दु के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि आचार्य शंकर का दर्शन मात्र एकत्ववादी दर्शन नही है। तत्त्व को 'एक' कहने की बजाय शंकर उसे 'अद्वैत' कहते हैं, क्योंकि संख्यावाची शब्द सापेक्ष होगा और परमतत्त्व तो 'निरपेक्ष' है। यह भेद ही नहीं अभेद की उस कोटि का भी अतिक्रमण कर जाता है, जो भेद सापेक्ष हो। यह तो वह आधारभूत चेतना हे, जो सभी प्राणियों का अधिष्ठान है। द्वितीय, आक्षेप के समाधान में कहा जा सकता है कि शंकराचार्य ने जीव, जगत् और ईश्वर को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया है।

वास्तविकता यह है कि कोई भी दर्शन चाहे वह पर्णू प्रत्ययवादी ही क्यों न हो,वाह्य जगत् की वास्तविकता को नकार नहीं सकता है। इस सम्बन्ध में विज्ञानवादी ग्रीन का कथन उल्लेखनीय है, 'यह जगत हमारे लिए सत्य है, इस तथ्य को कोई दर्शन विवादास्पद नहीं मानता'[11]। शंकराचार्य भी इसके अपवाद नहीं हैं, उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से जगत्, जीव और ईश्वर को उतना ही सत्य माना है, जितना रामानुज या अन्य वस्तुवादी दार्शनिक मानते हैं। इसीलिए शंकर को व्यवहार में वस्तुवादी और परमार्थ में प्रत्ययवादी कहा जाता है। तृतीय बिन्दु का जवाब शंकराचार्य के 'सौन्दर्य लहरी' आदि स्तुति ग्रन्थ है। व्यावहारिक दृष्टि से तो ईश्वर ही जगत् की सर्वोच्च सत्ता है। इस सगुण ब्रह्म से ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति हुयी है। इस जगत् को और इसके अधिष्ठाता ईश्वर को व्यवहार के स्तर पर कोई चुनौती नहीं दे सकता। इस प्रकार शंकर के दर्शन में भक्त और उसकी भक्ति के लिए स्थान सुरक्षित है। स्वयं शंकराचार्य का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक भावना से ओत–प्रोत रहा है। ईश्वर की स्तुति करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि, मुझमे और आपमें तनिक भी भेद नहीं, फिर भी हे प्रभु मै आपका हूँ, न कि आप मेरे जैसे लहरें समुद्र की होती हैं न कि समुद्र लहरों का – 'सत्यपि भेदापगमे नाथ। तवाहं न मामनेकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समद्रो न तारंगः[12]। आत्मज्ञान के पूर्व समस्त लौकिक और वैदिक व्यवहार को शंकराचार्य ने सत्य माना है और साग्रह बारंबार इसका प्रतिपादन किया है। भक्ति की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व देने के कारण शंकराचार्य के दर्शन पर अतिशय बौद्धिक होने का आक्षेप भी लगाया जाता है। यह सत्य है कि आचार्य शंकर ज्ञानमार्ग के प्रबल प्रतिपादक हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे कर्म और भक्ति की उपेक्षा करते हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन किसी कर्मयोगी से कम नहीं है। अपने अल्प जीवन काल में जिस प्रकार उन्होंने चतुर्दिक वैदिक मत का प्रचार–प्रसार किया, मठ स्थापना किया और विभिन्न ग्रन्थों और भाष्यों की रचना किया, वह किसी निष्क्रिय व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुति में उनके द्वारा लिखे गए भावपूर्ण स्तुति ग्रन्थों को देखकर कोई अज्ञानी या अल्पज्ञानी ही उन पर भक्ति की उपेक्षा का आरोप लगा सकता है।

कहा जा सकता है कि व्यवहार के स्तर पर शंकराचार्य को रामानुजाचार्य के लगभग सभी सिद्धान्त मान्य हैं। व्यवहार के स्तर पर शंकराचार्य भी जीव, जगत् और ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास करते हैं। व्यवहार के स्तर पर शंकराचार्य कट्टर वस्तुवादी से भी एक कदम आगे के वस्तुवादी हैं। वे स्वप्न और भ्रम के पदार्थों को भी प्रातिभासिक सत्ता प्रदान करते हैं।

डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार, ''शंकर और रामानुज दोनों वेदान्त के महान् विचारक हैं। इन दोनों में प्रत्येक के उत्तम गुण दूसरे के दोष हैं।'' तात्पर्य यह है कि दोनो ं ही दर्शन पद्धतियाँ अपनी–अपनी मान्यता एवं स्वरूप के अनुसार बलपूर्वक स्थापित की गयी है। प्रतिपाद्य विषय दोनों का समान होने के बावजूद प्रतिपादन शैली की भिन्नता के कारण दोनों के दर्शन में भेद परिलक्षित होता है। धार्मिक दृष्टिकाणे ा से रामानुज का दर्शन निःसन्देह अद्वितीय है, किन्तु धर्म जीवन का प्रथम चरण है और दर्शन द्वितीय। धर्म साधन है और दर्शन साध्य। दार्शनिक दृष्टिकोण से अद्वैत वेदान्त अतुलनीय है।

अद्वैत वेदान्त वस्तुतः बौद्धिक और दार्शनिक विकास की पराकाष्ठा है। सभी भारतीय दर्शनों के तत्व अद्वैत में विद्यमान हैं। पूर्ववर्ती दर्शनों की युक्तियों का खण्डन न करके समन्वय की दृष्टि अपनाते हुए इनमें संगति की जा सकती है। व्यवहार के समर्थक वचनों की व्याख्या श्रुति के अनुकूल करते हैं। विभिन्न दर्शनों की अद्वैत को साथ तारतम्यता को इस प्रकार समझा जा सकता है – चार्वाक मत दर्शन विचार की प्रथम अवस्था है। शरीर विशिष्ट आत्मा का स्थूल निरूपण ही इस मत में मान्य होने से तैत्तिरीयोपनिषद् के अन्नमय कोष के अन्तर्गत इसकी सार्थकता है। जैन दर्शन का तत्व विचार उच्चकोटि का है किन्तु स्याद्वाद को मानकर पदार्थ का अनेक धर्मो वाला सिद्ध करने से यह मत संशय की कोटि में आ जाता है। संशय संकल्प विकल्पात्मक मन की अवस्था होने से यह विचार भी मनोमय कोष के अन्तर्गत है। बौद्धमत का विज्ञानवाद और शून्यवाद विज्ञानमय कोष के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। न्याय–वैशेषिक का ईश्वर, जीव और परमाणु का निरूपण द्वैत के अन्तर्गत है। सांख्य–योग नैयायिकों से आगे बढ़ते हुए परमाणुओं को एक प्रकृति में समाहित करते हैं अर्थात् असंख्य परमाणुओं की अपेक्षा एक प्रकृति का प्रतिपादन करते हैं। वेदान्त इन सबसे आगे बढ़कर एक अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करता है। इस प्रकार दार्शनिक विकास स्थलू से सूक्ष्म की ओर हुआ है। सभी दर्शनों की तार्किक परिणति अद्वैत ही है। रामानुज के दर्शन की भी तार्किक सगंति अद्वैत मानने पर ही सिद्ध होती है। इसीलिए रामानुज के दर्शन को पूर्व भूमि और शंकर के दर्शन को उत्तर भूमि कहा जा सकता है। भारतीय मनीषा ने सृष्टि विषयक जिन मतों का बीजारोपरण उपनिषद् के रूप में किया था, विभिन्न अवस्थाओं को पार करता हुआ उनका पुष्पन–पल्लवन वेदान्त दर्शन के रूप में हुआ है। वेदान्त के दो महान आचार्यो शंकर और रामानुज ने उपनिषदीय सिद्धान्तों की अपने समय और सम्प्रदाय के

अनुरूप व्याख्या किया। रामानुज के प्रायः सभी सिद्धान्त शंकराचार्य को व्यवहार के स्तर पर मान्य हैं। अन्तर परमार्थ के स्तर का है,जिसे रामानुज मानते ही नहीं। अतः व्यवहार के स्तर पर शंकर और रामानुज दोनों के अनुसार हमारा जगत्, जगत् की वस्तुएँ और जागतिक अनुभव पूर्णतः सत्य है। शंकराचार्य ने इससे आगे की सोच को प्रस्तुत करते हुए उपनिषदीय सिद्धान्त को उसके चरम स्तर पर पहुँचाया और 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का प्रतिपादन किया अर्थात् आत्मज्ञान के बाद जगत् के मिथ्यात्व का बोध हो जाता है। जगत् को व्यवहार के स्तर पर सत्य और परमार्थ के स्तर पर मिथ्या मानना दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य की अद्भुत देन है।

सन्दर्भ–टिप्पणी

1. गीता, शांकर भाष्य, 18/66
2. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, 2–1–4
3. मध्वाचार्य (2012) : सर्वदर्शनसंग्रह चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी रामानुज दर्शन,
4. रामानुजाचार्य, श्रीभष्य, 1/1/1
5. मध्वाचार्य, सर्व दर्शन संग्रह, 5/1
6. रा0भा0 गीता, 13–2, 2–12 एवं रा0भा0 ब्रह्मसूत्र 2–1–22 तथा 1–1–1
7 रा0भा0 गीता, 13–2, रा0भा0 ब्रह्मसूत्र 2–1–15 तथा सर्वदर्शन संग्रह, 4–27
8. रा0भा0 ब्रह्मसूत्र 2–3–42
9. चटर्जी एवं दत्त (1990) : पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाउस, पटना, भारतीय दर्शन, पृ0 319
10.हिरियन्ना एम0 (1994) : आउटलाइंस आफ इण्डियन फिलॉसॉफी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 408
11. वर्क्स भाग–1, पृ0 376, उद्घृत शर्मा चन्द्रधर (1995) : भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, नरेन्द्र प्रकाश जैन मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, पृ0 315
12. षट्पदी, 3

LBP PUBLICATION